भारत के अध्यापकों से

स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'

पचास पैसे

संस्थानप्रकाशन-संख्या : २७

चतुर्थ संस्करण : ज्येष्ठ, २०३३ वि : मई, १९७६ ई

[अब तक कुल ८,२०० प्रतियां प्रकाशित]

प्रकाशक : वेद-संस्थान, बाबू मोहल्ला, ब्यावर रोड, अजमेर

मुद्रक : प्रिंट हाउस, अजमेर

भारत के अध्यापकों से

स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'

वेद के अध्ययन और मानव-संस्कृति

के

ज्ञान का सर्वोत्तम और सर्वसुलभ माध्यम

सविता

[वेद–संस्थान का मासिक पत्र]

- देव के दिव्य काव्य, वेद के अध्ययन का सर्वश्रेष्ठ साधन,
- वेदमन्त्रों की 'विदेह' -कृत मौलिक, जीवनप्रद, यथातथ्य व्याख्या,
- अत्यन्त ठोस, सुपच, पौष्टिक, प्रेरणाप्रद सामग्री से भरपूर,
- अथर्ववेद का अध्ययन, ऋग्वेद का अध्ययन, आदि स्थायी स्तम्भों से समलंकृत,
- विद्वानों के उच्च कोटि के पथप्रदर्शक लेखों से समन्वित ।

॥ एक एक शब्द पठनीय, मननीय, आचरणीय ॥
॥ एक एक तरंग मानव को ऊंचा उठानेवाली ॥
॥ एक एक प्रेरणा जीवन को आगे लेजानेवाली ॥
॥ एक एक चेतावनी मानव के मानस को चेतानेवाली ॥

वार्षिक मूल्य छह रुपए [विदेशों में बारह रुपए]

स्वयं ग्राहक बनिए और अपने प्रिय जनों को बनाइये

वेद-संस्थान,

बाबू मोहल्ला, ब्यावर रोड, अजमेर 305001 (भारत)

राष्ट्रनिर्माण

आदरणीय अध्यापिकाओ और अध्यापको,

राष्ट्र का निर्माण न मिनिस्टर कर सकते हैं, न मिलमालिक। राष्ट्र का निर्माण न विशाल भवनों में होगा, न कारख़ानों में।

राष्ट्र का सच्चा निर्माण, वास्तविक निर्माण, ठोस और स्थायी निर्माण आप ही करेंगे और वह आपके विद्यालयों में ही होगा। आप हैं और आपके विद्यालय भी हैं। फिर भी राष्ट्र का निर्माण नहीं हो रहा है। राष्ट्र का क्षय और ह्रास ही होरहा है। ऐसा क्यों होरहा है? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, जिसका उत्तर आपको देना है।

आप कहेंगे, अध्यापक की आर्थिक स्थिति इतनी चिन्ताजनक है कि वह पूर्ण मनोयोग के साथ विद्यार्थियों को शिक्षा नहीं दे सकता। आप कहेंगे, प्रत्येक कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या इतनी अधिक है कि अध्यापक प्रत्येक विद्यार्थी से व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करके उनके जीवननिर्माण पर ध्यान नहीं दे सकता। आप कहेंगे, कोर्स की किताबें इतनी अधिक हैं कि कोर्स पूरा कराने में ही सारी शक्ति व्यय होजाती है। आप कहेंगे, विद्यार्थी इतने उच्छृङ्खल हैं कि उनपर शिक्षोपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। आप कहेंगे, समाज के विषैले वातावरण से विद्यार्थियों की रक्षा करना असम्भव है। ये और ऐसी अनेक बातें हैं, जिनका उल्लेख अध्यापक प्रायः किया करते हैं।

आप विद्वान् हैं, विचारशील हैं। आप भारत के करोड़ों भावी नागरिकों के गुरू हैं। आपके प्रति समुचित समादर के साथ मैं आपकी सेवा में निवेदन करूंगा कि आपने इस समस्या पर गहराई के साथ विचार नहीं किया है। मैं चाहता हूं कि इस लेखमाला द्वारा मैं आपकी सेवा में 'राष्ट्र के प्रति आपका कर्तव्य' तथा 'विद्यालयों में विद्यार्थियों के जीवन का निर्माण' पर संक्षेप में अपने विचार प्रस्तुत करूं। आशा है आप मेरे निवेदन पर यथोचित ध्यान देंगे। यह मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यदि आप मेरे विचारों व सुझावों पर ध्यान देंगे तो आपके द्वारा देश और संसार की निश्चय ही यथार्थ सेवा होगी।

आपका अपना

विद्यानन्द 'विदेह'

गुरु आचार्य [२]

आप न टीचर हैं, न मास्टर, न प्रोफ़ेसर। ये तो अंगरेजी नाम हैं। इन नामों के अर्थों में वह गहन और सुन्दर भावना कहां, जो आपके संस्कृत के नामों में है।

संस्कृत की नामावली के अनुसार आप गुरु हैं, आचार्य हैं।

जिसमें गुरुता [महानता] हो, लघुता न हो, उसे गुरु कहते हैं। आप गुरु हैं। आपके जीवन में गुरुता होनी चाहिए। गुरुता का अधिक सम्बन्ध डिग्रियों या डिप्लोमाओं से नहीं है। गुरुता का अधिक सम्वन्ध उत्तम गुणों से है। डिग्रियों और डिप्लोमाओं का भी महत्त्व है। किन्तु गुरु पद पर सुशोभित होने के लिए इन डिग्रियों और डिप्लोमाओं के साथ साथ आपका जीवन उत्तम गुणों से सुभूषित भी होना चाहिए। सत्य, सरलता, पवित्रता, श्रद्धा, निष्ठा, संयम, तप, त्याग, निर्लोभता, नियमितता, [Regularity], समयितता [Punctuality], कर्तव्यपरायणता, सौम्यता, साधुता, आदि गुणों को धारण करके आप गुरु कहलाने के अधिकारी बनिए। आपके पद की वास्तविक शोभा इसी में है।

आप आचार्य हैं। आचार से आचार्य बनता है। जिसका आचार अनुकरणीय हो, उसे आचार्य कहते हैं। आपका आचार अनुकरणीय आचार होना चाहिए। आपका कर्तव्य जहां अपने विद्यार्थियों को विद्या का दान देना है, वहां आचार का दान भी देना है। विद्यादान से आचारदान कहीं अधिक श्रेष्ठ है। आचार्य में केवल गहन विद्या ही नहीं, आदर्श आचार भी होना चाहिए। आचार से ही विद्या की शोभा है। आचार ही विद्या का सच्चा शृङ्गार है। आचारहीन विद्या तो विद्या ही नहीं है, वह तो केवल साक्षरता है। आचारहीन साक्षरता से आचारयुक्त निरक्षरता कहीं अधिक श्रेष्ठ है। विद्यार्थियों को जहां आपकी वाणी से विद्या की प्राप्ति होनी चाहिए, वहां उन्हें आपके जीवन से शुद्ध और शिष्ट आचार की उपलब्धि भी होनी चाहिए।

अपने जीवन में उत्तम गुणों को
जड़कर गुरु बनिए।
अपने जीवन में आदर्श आचारों
को सुशोभित करके आचार्य बनिए।

पवित्रतम व्यवसाय [३]

आपकी सेवा में मुझे अब जो निवेदन करना है, वह यह है कि आप अपने व्यवसाय की पवित्रता तथा महत्ता और अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करें। संसार में जितने भी व्यवसाय हैं, आपका व्यवसाय सर्वातिशय पवित्र और महत्त्वपूर्ण है और इसीसे आपका उत्तरदायित्व भी सर्वाधिक है।

राष्ट्र और संसार की सबसे मूल्यवान् सम्पत्ति ये विद्यार्थी हैं। आज के विद्यार्थी ही कल राष्ट्र के नागरिक बनेंगे। आज के विद्यार्थी ही कल के विश्व-नायक हैं। यह अमूल्य सम्पत्ति आपके संरक्षण [Charge] में है। आप इनके विश्वकर्मा हैं। आपका कर्तव्य इन्हें साक्षर बनाना ही नहीं है, इनके जीवनों का सुनिर्माण भी है। विद्यार्थी राष्ट्र और संसार के भावी भाग्यविधाता हैं, तो आप इन भाग्यविधाताओं के भी भाग्यविधाता हैं।

कितना पुनीत है आपका व्यवसाय, कितनी गौरवपूर्ण है आपकी साधना और कितना विशाल है आपका उत्तरदायित्व ! कुछ क्षण एकान्त में बैठकर आप प्रति दिन अपने व्यवसाय की पवित्रता, अपने पद की प्रतिष्ठा, अपनी साधना की गुरुता तथा अपने उत्तरदायित्व की गम्भीरता पर कृपया विचार किया कीजिए। भारत के भविष्य को आप ही भव्य न बनाएंगे तो और कौन बनाएगा। भारत की लाज को आप ही न रखाएंगे तो और कौन रखायेगा। विश्व के सौभाग्य को आप ही न जगाएंगे तो और कौन जगाएगा।

आप अपने को किसी का अधीनस्थ नौकर या वैतनिक दास न समझिए। आपको जो वेतन मिलता है, वह तो राष्ट्र की ओर से आपकी आवश्यकतापूर्ति के लिए आपके चरणों में तुच्छ भेंट है। आप राष्ट्र के पूजार्ह हैं और विश्व के वन्द्य हैं। इस विषय में बस इतना ही....! इन पंक्तियों को लिखते लिखते मेरा जी भर आया है और मेरी आंखों में आंसू झलक पड़े हैं।

यहां मैं आपसे व्यसनों के विषय में कुछ निवेदन करना चाहता हूं। अध्यापकों के लिए सर्वथा निर्व्यसन होना ही शोभास्पद है। ऐसे अध्यापक भी हैं जो अफ़ीम, सुल्फ़ा, चरस, गांजा, भंग और शराब का सेवन करते हैं, यद्यपि ऐसे अध्यापकों की संख्या बहुत अधिक नहीं है। ऐसे अध्यापक तो बहुत अधिक हैं जो चाय तथा पान का सेवन अथवा धूम्रपान करते हैं।

आप जैसे सुपठित विद्वानों को यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि इन मादक द्रव्यों के सेवन से स्वास्थ्य, सौन्दर्य, आयु, स्वभाव, शील, चरित्र और धन की किस प्रकार और कितनी हानि होती है। व्यसनों के सेवन से जहां आपकी व्यक्तिगत क्षति होती है, वहां आपके परिवारों के लिए भी भयंकर परिणाम निकलते हैं। आपके व्यसन-सेवन से सबसे बड़ी हानि एक राष्ट्रीय हानि है, जिसकी ओर आपका चिन्तन अवश्य आकृष्ट होना चाहिए।

जैसाकि स्वाभाविक है, सामान्यतया साधारण जनता और विशेषकर विद्यार्थियों के अपक्व मस्तिष्क बुराई को जितनी सहजता से ग्रहण करते हैं उतनी सहजता से अच्छाई को ग्रहण नहीं करते। विद्यार्थी प्रायः सभी बातों में अपने अध्यापकों का जितना सहज अनुकरण करते हैं उतना अन्य किसी का नहीं करते हैं। अध्यापकों के व्यसनग्रस्त होने से विद्यार्थियों में व्यसनों की व्याप्ति बड़ी तीव्र गति से होरही है। चाय, पान और सिगरेट के व्यसन तो विद्यार्थियों में घर ही कर चुके हैं। व्यसनों के कुप्रभाव से उनमें अनेक शारीरिक और चारित्रिक अश्लील दोष भी प्रवेश कर चुके हैं। राष्ट्रीय दृष्टि से यह बड़ी चिन्ताजनक स्थिति है।

यह ठीक है कि विद्यार्थी अपने माता-पिता से भी व्यसन और अश्लीलता ग्रहण करते हैं। मैं जो संकेत करना चाहता हूं वह यह है कि यदि आप स्वयं सर्वथा निर्व्यसन होंगे तो आप विद्यार्थियों को व्यसनों से मुक्त रख सकेंगे। माता पिता की अपेक्षा आपका कहीं अधिक प्रभाव पड़ता है। और यह भी तो है कि व्यसनी विद्यार्थियों को व्यसनत्याग की शिक्षा और ताड़ना भी आप तभी तो कर सकेंगे जब आप स्वयं निर्व्यसन होंगे। इसमें संदेह नहीं कि 'वक्तृत्व की अपेक्षा कर्तृत्व कहीं अधिक प्रभावशाली होता है।' स्वयं व्यसन-रहित होकर और विद्यार्थियों को व्यसन-रहित बनाकर आप राष्ट्र की महत्त्वपूर्ण और पुनीत सेवा कर रहे होंगे।

आपकी शोभा और आपका यथार्थ उपयोग आप के व्यसनरहित होने में है।

आपकी कार्यक्षमता और कर्तव्य-निष्ठा, दोनों का, प्रत्यक्षत: बहुत ह्रास होगया है। स्कूलों व कोलेजों, दोनों में, अधिकांश प्रोफ़ेसर व टीचर अध्यापन कार्य पूर्ण तत्परता और पूर्ण मनोयोग के साथ नहींकररहे हैं।

ऐसे अध्यापक बहुत अधिक संख्या में हैं, जो हिन्दी व अंगरेज़ी लिखने बोलने में निराशाजनक ग़लतियां करते हैं। ऐसे प्रोफ़ेसर संख्या में कम नहीं हैं जो अपने अध्यापन के विशेष विषय में अपने विद्यार्थियों से विशेष आगे नहीं हैं। ऐसे अध्यापकों व प्रोफ़ेसरों के प्रति विद्यार्थियों के हृदय में अश्रद्धा का होना स्वाभाविक है।

पढ़ाने में जिन तप और साधना की आवश्यकता है आपको अपने में उसकी स्थापना करनी ही चाहिए। इससे भी अधिक यह आवश्यक है कि आप अपनी योग्यता और क्षमता में निरन्तर वृद्धि करते रहें। अपनी भाषा और अपने विषय पर आपका पूर्ण अधिकार होना चाहिए। और भी अधिक उपादेय और प्रशंसनीय हो, यदि आप अनेक भाषाओं और अनेक विषयों पर अधिकार सम्पादन करें।

मेरे अध्यापकों में से अनेक ऐसे थे जो थे तो मैट्रिक या एफ़. ए. पास, किन्तु उन्होंने अपनी साधना द्वारा ऐसी योग्यता सम्पादन की हुई थी कि वे एण्ट्रेन्स कक्षा तक हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी, अंगरेज़ी, इतिहास, भूगोल, गणित, रेखागणित, आदि सभी विषय बड़ी योग्यता के साथ पढ़ाया करते थे और उनके पढ़ाए विषयों में उनके विद्यार्थी बड़े पक्के होते थे।

आपका कार्य जितना पुनीत और यज्ञिय है, उतना इस संसार में अन्य किसी का नहीं है, इस तथ्य का आपको सदा विचार रहना चाहिए।

यह ठीक है कि देश में आज सभी
विभागों में अव्यवस्था और
शिथिलता है, पर आपके विभाग
में ऐसा न होना चाहिए।

आदर्श व्यक्तित्व [६]

द्वितीय सम्बोधन में मैंने आपसे निवेदन किया है कि आप न टीचर हैं, न मास्टर हैं, न प्रोफ़ेसर। आप गुरु हैं, आचार्य हैं। अध्यापिकाएं भी अपने आपको ऐसा ही समझें।

अध्यापकों व अध्यापिकाओं का जीवन साधना का जीवन होना चाहिए। उन्हें अपने साधनामय जीवन से न केवल विद्यालयों को, अपि तु समाज को भी प्रभावित करना है। आपकी प्रतिष्ठा न केवल विद्यार्थी जगत् में, अपि तु समाज में भी होनी चाहिए। साधारण जनता के हृदय में जिसने अपने लिए सम्मान प्राप्त नहीं किया है और जन जन की दृष्टि में जिसने अपने लिए दर्शनीयता प्राप्त नहीं की है, न वह अध्यापक अध्यापक है, न वह अध्यापिका अध्यापिका है।

आपका व्यक्तित्व आदर्श व्यक्तित्व होना चाहिए। विद्या व्यक्तित्व को सुशोभित नहीं करती, व्यक्तित्व विद्या को सुशोभित करता है। विद्यार्थियों के जीवन का निर्माण आपकी विद्या से नहीं, आपके आदर्श व्यक्तित्व से होगा। समाज का कल्याण आपकी उपाधियों से नहीं, आपके उपाधिरहित समुज्ज्वल व्यक्तित्व से होगा।

आपके व्यक्तित्व में वे सम्पूर्ण आदर्श समंकित होने चाहिएं, जिनकी आज मानव समाज को इतनी अधिक आवश्यकता है, जिनकी छाया आपके विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को सुविकसित करती चली जाए, जिनकी अमिट छाप आपके विद्यार्थियों के जीवनों से मिटाए न मिटे और जिनकी सजीव चेतना आपके विद्यार्थियों के जीवनों को सदा चेताती रहे।

शिक्षा-विभाग में सबसे अधिक छुट्टियां होती हैं। ग्रीष्मावकाश ही एक साथ लगभग दो मास का होता है। छोटे से छोटे पर्व की छुट्टियां अलग होती हैं। विशेष विशेष पर्वों के उपलक्ष में पर्याप्त छुट्टियां होती हैं। शिक्षा-विभाग को यदि छुट्टी-विभाग कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी।

वर्ष में इतनी अधिक छुट्टियों के कारण पढ़ाई के कोर्स को ससमय सुचारुता के साथ पूरा कराना कठिन होजाता है। इसपर भी यदि आपमें विशेषावकाश [Casual and other leave] लेने की वृत्ति हो तो विद्यार्थियों की कितनी हानि होगी।

अपनी विद्यासमाप्ति पर मैं लगभग दो वर्ष अध्यापक रहा था और उस अवधि में मैंने कभी एक दिन तो क्या, एक घण्टे [Period] की भी छुट्टी नहीं ली। ऐसा करने से पढ़ाई का क्रम कैसी उत्तमता के साथ चला, यह इसी एक बात से ज्ञात होजाएगा कि मेरे पढ़ाए विषयों में एक विद्यार्थी भी न कभी फ़ेल हुआ, न प्रोमोट [Promote] हुआ। सब सब विषयों में बड़े अच्छे नम्बरों से पास हुए।

मैं चाहता हूं कि आप अपने निज के, पारिवारिक और सामाजिक सब कार्यों की व्यवस्था विभागीय छुट्टियों में ही कर लिया करें। एक सच्चा, अच्छा और आदर्श अध्यापक वर्ष-भर में एक घण्टे की भी अतिरिक्त छुट्टी नहीं लेगा—यह आप अपना आदर्श-वाक्य बनालें। साथ ही एक निष्ठावान् अध्यापक स्कूल के समय में से एक मिनट भी अपने प्राइवेट कार्य में नहीं लगाएगा, अपि तु निज के बचत के समय में से भी अधिक से अधिक समय स्कूल की सेवा में लगाना चाहेगा।

आपकी अवकाशवृत्ति के परिणामस्वरूप विद्यार्थियों की विद्या का स्तर निम्नतर होता जारहा है। अवकाशवृत्ति से प्रमाद की वृद्धि होती है। प्रमाद से कार्यक्षमता का ह्रास होता है। कार्यक्षमता के ह्रास से अध्यापन-कार्य त्रुटिपूर्ण होजाता है।

निर्दोष निष्पाप जीवन [८]

आपका जीवन नितान्त पवित्र, निर्दोष और निष्पाप होना चाहिए। मुझे एक मर्मवेदना होती है, जब मैं अध्यापकों में व्यापे हुए दुराचार की चर्चाएं सुनता हूं। अध्यापकों और अध्यापिकाओं में फैले हुए दुराचार का ही परिणाम है कि भारत के युवकों और युवतियों में चरित्रहीनता बढ़ती चली जारही है।

अध्यापक-अध्यापिकाएं वास्तव में विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों के पिता माता हैं। अध्यापक-अध्यापिकाओं को चाहिए कि वे अपने विद्यार्थियों और अपनी विद्यार्थिनियों को पुत्र पुत्री के समान समझें और उसी प्रकार उनके साथ वर्तें।

अध्यापिकाओं और अध्यापकों को शृङ्गारप्रिय न होना चाहिए। उनका जीवन अतिशय सादा, सरल और स्वच्छ होना योग्य है। उनके विचार अतिशय पवित्र, उनकी भावनाएं अतिशय निर्मल, उनका व्यवहार अतिशय पावन और उनका आचार परम पुनीत होना चाहिए। उनका चरित्र अतिशय चारु और उनका चरित सर्वथा अनुकरणीय होना चाहिए।

उपदेश की अपेक्षा आदर्श का कहीं अधिक महत्त्व और प्रभाव होता है। आपका खान पान, रहन सहन, चिन्तन मनन, काम काज, चलना फिरना, हंसना बोलना, पढ़ाना लिखाना—सब इतना विशुद्ध और आदर्शरूप हो और हो इतना प्रिय और आकर्षक कि आपके अनुकरण से आपके विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों के जीवन, अपि च स्वयं आपके अपने पुत्र-पुत्रियों के जीवन, स्वयमेव निखरते और उभरते चले जाएं।

आपकी दृष्टि, आपकी श्रुति, आपकी वाणी और आपकी करनी हो ऐसी पावमानी और कल्याणी कि उनके पावन और पुनीत प्रभाव से आपके शिष्यों और शिष्याओं के जीवन अन्दर बाहर से सदा के लिए शुद्ध, पवित्र, निर्दोष और निष्पाप बन जाएं। आप अपने स्वयं के जीवन को जितना ऊंचा उठाएंगे, आपके राष्ट्र के इन कुमारों और कुमारियों के जीवन उतने ही, बल्कि उससे भी अधिक, ऊंचे उठते चले जाएंगे। आपका अपना जीवन सार्थक होगा और उनके जीवन का उत्थान होगा। आपका कल्याण होगा और उनका भी कल्याण होगा।

आपका अपना धार्मिक जीवन ही आपके विद्यार्थियों के लिए एक सदा खुला हुआ सर्वोत्कृष्ट धार्मिक ग्रन्थ हो सकता है। प्रिंटिंग प्रेस में छपी हुई धार्मिक पुस्तकों के पढ़ने से विद्यार्थियों के जीवनों में धार्मिकता की छाप तभी पड़ेगी, जब आपके जीवनों से विद्यार्थियों के जीवनों में धार्मिकता की सक्रिय शिक्षा मिलेगी। पढ़ाने से नहीं, करके दिखाने से आपके विद्यार्थी धार्मिक बनेंगे। पढ़ने से नहीं, आपके अनुकरण से आपके विद्यार्थी धर्मनिष्ठ होंगे।

आस्तिकता [ईश-आत्म-विश्वास], कर्तव्यपरायणता, संयम और व्यवहार-शुचिता—ये चार धर्म के स्तम्भ हैं। यदि आपके जीवन में धर्म के ये चार स्तम्भ समंकित हैं तो निस्सन्देह आप पूरे धर्मात्मा हैं। आपके चौबीसों घण्टे के जीवन में धर्म की इन चारों ज्योतियों की झलक होनी चाहिए। अपनी करनी व कथनी—दोनों के द्वारा धर्म के इन चारों अंगों को अपने विद्यार्थियों के जीवनों में संचारित कीजिए। अन्यथा आपके राष्ट्र और संसार का वास्तविक कल्याण होना सर्वथा असम्भव होगा।

किसी भी विषय को पढ़ाते हुए आप प्रसंगवश इन चारों धर्मांगों को अपने विद्यार्थियों के श्रोत्र तथा मानस में संविष्ट करते रहें, सर्वत्र इन चार सांचों में उनके जीवनों को ढालते रहें।

आज तो स्वयं अध्यापकों के जीवन भी धर्म की इन चार सम्पदाओं से नितान्त शून्य से हैं। मानवता के नाम पर आप अपने आपमें, अपने साथी अध्यापकों में और विशेषतया अपने विद्यार्थियों में इस चतुर्धा धार्मिकता का बीजवपन तत्परता के साथ कीजिए। इसके बिना न सच्चा समुत्थान होगा, न वास्तविक सुनिर्माण होगा।

आपका जीवन प्रेरणाओं का पुञ्ज होना चाहिए। जिस प्रकार सूर्य में से प्रकाश की किरणें प्रसारित होकर सब दिशा-विदिशाओं में प्रकाश पूर देती हैं, उसी प्रकार आपके जीवन से आपके विद्यार्थियों को सुप्रेरणाएं प्राप्त होनी चाहिएं। आपका व्यक्तित्व ऐसा प्रेरणाप्रद हो कि आप जब भी अपने विद्यार्थियों वा विद्यार्थिनियों के सम्मुख या मध्य में आएं, वे आपसे प्रेरणा व स्फुरण लेकर जाएं।

यन्त्रवत् रूढ़गति जीवन भी कोई जीवन है। जीवन, सच्चा जीवन, अच्छा जीवन वही है जो तरंगों से तरंगित हो और दूसरों के जीवनों में तरंगें तरंगित करनेवाला हो। वह सूर्य क्या जिससे रश्मियों का प्रसरण न हो। वह सागर क्या जिसका मानस तरंगों से तरंगित न हो। वह आचार्य क्या जिसका जीवन प्रेरणाओं का सम्प्रेरक न हो।

विद्यार्थियों को आपके जीवन से सच्चरित्र और सदाचार की, पवित्रता और सत्य की, तप और त्याग की, श्रद्धा और संकल्प की, राष्ट्रनिर्माण और राष्ट्रोन्नति की, जीवन-निर्माण और आत्मोत्थान की, श्रम और साध की, मान और स्वाभिमान की, जनहित और लोककल्याण की, शिष्टता और शालीनता की, अध्यात्म और योग की, दक्षता और क्षमता की, तितिक्षा और सहनशीलता की, संयम और अनुशासन की, कर्मनिष्ठा और मर्यादापालन की, शक्ति और संज्ञान की उदात्त समुदात्त और जीती जागती प्रेरणाएं सदा सर्वदा मिलती रहें, आप ऐसे प्रेरणा-पुञ्ज बनिए।

प्राचीन काल में किसी एक आचार्य ने अपने विद्यार्थियों से कहा था, 'हमारे आचार में जो जो बातें प्रशंसनीय हैं, उन उन का अनुकरण करो और जो जो बातें निन्दनीय हैं, उन उन का सदा परित्याग रखो'।

वह आचार्य कोई अच्छा आचार्य नहीं था। वह यह भूल गया था कि विद्यार्थियों को आचार की सम्प्राप्ति आचार्य से ही होती है। आचार्य का जैसा आचार होता है, वैसा ही आचार उसके विद्यार्थियों का होता है। ईरान की यह कहावत अक्षरशः सत्य है कि बालक अपने माता पिता से स्वभाव ग्रहण करते हैं और अपने उस्ताद से आचार ग्रहण करते हैं।

वे माता पिता कितने अज्ञानी हैं, जो अपने स्वयं के स्वभाव को न सुधारकर अपने बच्चों के स्वभाव को उत्तम बनाना चाहते हैं। वे आचार्य कितने दयनीय हैं, जो स्वयं आचारवान् न होकर अपने विद्यार्थियों को आचारवान् देखना चाहते हैं। प्रशंसनीय तो वह आचार्य था, जिसने कहा था, 'आचारः परमो धर्मः' 'आचार परम धर्म है'। वह आचार्य कितना प्राज्ञ था, जिसने कहा था, 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः', 'आचारहीन को वेद पवित्र नहीं करते'।

आपके जीवन की प्रत्येक चेष्टा व गति आचार या दुराचार के अन्तर्गत है। आपका प्रत्येक व्यवहार आचार या दुराचार है। आपकी जो चेष्टा और गति सुष्ठु है, वह सब आचार है। आपका जो शिष्ट व्यवहार है, वह सब सदाचार है। आपकी जो चेष्टा और गति अशोभनीय है, वह सब दुराचार है। आपका जो अशिष्ट व्यवहार है, वह सब दुराचार है। **भद्र चेष्टा, साधु गतिविधि और शिष्ट व्यवहार—इन तीनों के समुच्चय का नाम ही आचार है।** अभद्र चेष्टा, असाधु गतिविधि और अशिष्ट व्यवहार—इन तीनों के समुच्चय का नाम दुराचार है।

आपके चौबीसों घण्टों का जीवन आपके विद्यार्थियों के लिए आचार या दुराचार की एक खुली हुई पुस्तक है। इस तथ्य को आप एक क्षण के लिए भी अपनी दृष्टि से ओझल न कीजिए। अपने स्वयं के सम्मान के लिए, अपने विद्यार्थियों के कल्याण के लिए और अपने प्रतिष्ठित राष्ट्र के भविष्यनिर्माण के लिए आप अपने प्रत्येक छिद्र को पूर कर, अपनी प्रत्येक त्रुटि को दूर कर और अपनी प्रत्येक दुर्बलता को हटाकर आचारवान् बनिए और आचार्य-पद की लाज रखिए।

अध्यापन-कार्य एक पावन कला है और अध्यापक है एक पुनीत कलाकार– प्रत्येक अध्यापक का यह आदर्श-वाक्य [मोटो] होना चाहिए।

अध्यापन में क्रम और पद्धति का सर्वोपरि स्थान है। अपने विषय के पाठ को पढ़ाने से पूर्व अध्यापक के मस्तिष्क में यह चित्र स्पष्टतया खिंचा होना चाहिए कि उस पाठ को किस क्रम और किस पद्धति से पढ़ाया जाना है। पढ़ाने का क्रम वैज्ञानिक और पढ़ाने की पद्धति बहुत रोचक होनी चाहिए। साथ ही क्रम ऐसा स्वाभाविक और पद्धति ऐसी सुबोध हो कि निम्नतम कोटि का विद्यार्थी भी उसे पूर्णतया समझ जाए। क्रम और पद्धति मन्द-बुद्धि विद्यार्थियों को दृष्टि में रखकर व्यवस्थित करनी चाहिए।

अध्यापक को यह स्मरण रहना चाहिए कि प्रसन्न और आतंकरहित वातावरण में विद्यार्थी किसी भी विषय को बड़ी सरलता से समझ लेते हैं। आतंक और विषाद के वातावरण में विद्यार्थियों के मस्तिष्क और हृदय में ऐसी प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न होती है कि वे पठित और स्मृत विषय में भी गड़बड़ा जाते हैं।

अध्यापन में व्यवधान बड़ा हानिकारक होता है। शिक्षा-विभाग में सर्वाधिक छुट्टियां होती हैं। अध्यापकों को अपने सब कार्य छुट्टियों में कर लेने चाहिएं। अध्यापन-सत्र में अध्यापकों को कभी एक दिन के लिए भी अनुपस्थित न होना चाहिए।

अध्यापक का सारा प्रयत्न अपने विद्यार्थियों में योग्यता का सम्पादन करके शिक्षा के स्तर को ऊंचा करने की दिशा में होना चाहिए, पूछे जाने योग्य प्रश्नों के उत्तर रटाकर पास कराने की दिशा में नहीं। जैसे तैसे पास करा देने की प्रवृत्ति से शिक्षा का स्तर गिर जाता है।

एक समय था जब हमारे देश का नाम आर्यावर्त था और अध्यापक के लिए बृहस्पति शब्द का प्रयोग होता था।

आर्यावर्त का अर्थ है वह देश जिसमें आर्या और आर्य निवास करते हैं। आर्या: ज्योतिरग्रा:। आर्य का अर्थ है ज्योतिष्मान्, प्रकाशमान्। सकर्मा आर्य: अकर्मा दस्यु:। कर्तृत्व-क्षमता से जो युक्त हो, वह आर्य है। जो कर्तृत्व-क्षमता से शून्य हो, वह दस्यु है। सुकर्मा आर्य: कुकर्मा दस्यु:। जो सदा सुकर्म ही करता है, वह आर्य कहाता है। जो कुकर्म करता है, वह दस्यु है। संक्षेप में आस्तिक, धर्मात्मा, सोम्य, सदाचारी, सुशील, शुद्ध, पवित्र, धीर, वीर, कर्मण्य, सुकर्मा स्त्री पुरुषों को आर्या और आर्य कहते हैं।

बृहस्पति का अर्थ है बृहत्-पति, सुमहान् संरक्षक, The Great Master, महतो महान् स्वामी।

बृहस्पति और आर्य का परस्पर जो सम्बन्ध है, उसे आप अनुभव कीजिए। दो शब्दों में, आर्य का अर्थ है आदर्श मानव और दो ही शब्दों में बृहस्पति का अर्थ है आदर्श अध्यापक। जब अध्यापक और अध्यापिकाएं अपने आपको बृहस्पति बनाएंगे, तब ही वे राष्ट्र के नागरिकों को आर्या और आर्य बना सकेंगे। बृहस्पति ही इस देश को आर्यावर्त और इस राष्ट्र को आर्य राष्ट्र बना पाएंगे।

बृहस्पति बनिए और अपने आर्यकरण के मिशन को पूरा कीजिए।

आध्यात्मिक जीवन [१४]

आपका जीवन नितान्त आध्यात्मिक होना चाहिए। आध्यात्मिकता और सदाचार का घनिष्ठ सम्वन्ध है। आध्यात्मिकता से युक्त जीवन में ही सदाचार निहित होता है।

आध्यात्मिकता की स्थापना के तीन परम साधन हैं—सत्संग, स्वाध्याय और ईशोपासना।

सन्त और ऋषि कोटि के पुरुषों और महिलाओं के सदुपदेशों में अवश्य जाइए। जिज्ञासा भाव से उनके चरणों में बैठकर आत्म-रहस्यों की खोज कीजिए।

आध्यात्मिक सद्ग्रन्थों और आदर्श जीवनचरित्रों के स्वाध्याय से अन्तःकरण में प्रकाश का उदय होता है।

योगविधि से प्रातः कुछ मिनिट परमात्मा का ध्यान और सायं कुछ मिनट ईशप्रार्थना आपके आत्मदीप को प्रदीप्त करेगी, जिससे आपके अन्तःतमस् का सर्वथा निवारण होजाएगा।

इन तीन साधनों से जब आप अपने जीवनों को आध्यात्मिक बना लेंगे, वास्तव में तो तब ही आप सच्चे अर्थों में आचार्य और आचार्या कहलाने के अधिकारी होंगे।

स्वास्थ्य और कर्मक्षमता [१५]

मानव के जीवन में स्वास्थ्य का एक नैतिक आधार है। अस्वस्थ या रोगी मनुष्य कहीं भी अपने कर्तव्य कर्म का यथावत् निर्वहन नहीं कर सकता। कर्तव्य कर्म का यथावत् निर्वहन न कर सकना प्रत्यक्षतः अनैतिकता है।

यदि निष्ठा और आस्था की कसौटी पर कसकर देखा जाए, तो अध्यापन कार्य से अधिक श्रेष्ठ और श्रमसाध्य अन्य कोई कार्य नहीं है। फिर अध्यापक और अध्यापिका को शारीरिक दृष्टि से भी एक आदर्श स्थापित करना चाहिए।

निस्सन्देह आपका यह पुनीत कर्तव्य है कि आप अपने स्वास्थ्य को सदा आदर्शरूप और अक्षुण्ण रखें। अस्वस्थ अध्यापिका व अध्यापक विद्यालय के लिये वरदान न होकर एक भयंकर अभिशाप होते हैं। अस्वस्थ आचार्य जितनी चाहिए उतनी तत्परता और दक्षता के साथ अध्यापन कार्य नहीं कर सकते। और न ही वे अपने विद्यार्थियों को सुस्वस्थ रहने की यथार्थ प्रेरणा ही कर सकते हैं। अस्वस्थ शिक्षक बार बार अवकाश लेते हैं और निर्धारित कोर्स को ससमय पूरा नहीं करा पाते हैं।

कठोर परिश्रम और अधिकाधिक अध्यवसाय एक सच्चे आचार्य की दो ज्वलन्त विभूतियां हैं, जिनका मुख्य आधार सुन्दर और सुदृढ़ स्वास्थ्य है। सम्पूर्ण साधनोपायों से सदा नीरोग और स्वस्थ रहिए।

स्मरण रखिए—रोगी होना महा पाप है। अस्वस्थ रहना अक्षम्य अपराध है।

देखते देखते ही भारतीय समाज में अध्यापकों और अध्यापिकाओं का वह मान नहीं रहा है, जो कभी था। समाज में अध्यापक का मान दिन पर दिन गिरता चला जारहा है। यह अवस्था शोचनीय तो है ही, गम्भीरता के साथ विचारणीय भी है।

मान शब्द के दो प्रसिद्ध अर्थ हैं—(१) आदर [Respect] और (२) माप-स्तर [Standard]। क्या आपने कभी विचार किया है कि इस एक शब्द के दो अर्थ क्यों हैं ? मान शब्द के ये दो अर्थ एक दूसरे के पूरक तो हैं हीं, एक गहन रहस्य के द्योतक भी हैं। आदर और स्तर का घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी भी व्यक्ति या वस्तु का आदर उसके अपने स्तर के अनुपात से होता है। ज्यों ज्यों किसी व्यक्ति या वस्तु का स्तर ऊंचा होता जाता है, त्यों त्यों उसका आदर बढ़ता चला जाता है। ज्यों ज्यों उसका स्तर नीचा होता जाता है, त्यों त्यों उसका आदर घटता चला जाता है।

मान शब्द की इस व्याख्या से आप वास्तविकता को सम्यक्तया समझ गए होंगे। अध्यापक वर्ग के मान की हानि का कारण उस वर्ग के स्तर का गिर जाना है। जब अध्यापक वर्ग का स्तर गिर जाता है तो विद्यार्थियों के जीवनों का न तो सुष्ठु निर्माण होपाता है, न उनमें क्षमता और योग्यता की स्थापना हो पाती है। परिणाम यह होता है कि राष्ट्र के भावी नागरिक ये विद्यार्थी अक्षम और अयोग्य रह जाते हैं।

मैं यह मानता हूं कि अध्यापक वर्ग में बड़े योग्य और पुनीत व्यक्ति भी हैं, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। अध्यापकों के जो संगठन बने हुए हैं, उनके माध्यम से अध्यापकों के नैतिक, चारित्रिक और आत्मिक स्तर को ऊंचा उठाने का समारम्भ कीजिए। परस्पर एक दूसरे के सामाजिक आचार और व्यवहार को ऊंचा कीजिए। विद्या सम्बन्धी योग्यता तथा अध्यापन सम्बन्धी कला को सुविकसित करने की प्रेरणा भी परस्पर करते रहिए।

स्वास्थ्य, सदाचार, कर्तव्यपरायणता, तथा अध्यापन—इन पांचों विषयों में आप अपने स्तर को निरन्तर ऊंचा करते रहिए। इससे आपके वर्ग का सम्यक् आदर बढ़ेगा।

आपका व्यवसाय बड़ा पवित्र और श्रेष्ठ व्यवसाय है। मेरी अपनी मान्यता तो यह है कि अध्यापन कार्य से बढ़कर अन्य कोई कार्य इस संसार में नहीं है। मैं स्वयं संन्यासी हूं और संन्यासी को भारतीय समाज में सर्वोच्च स्थान दिया गया है। परन्तु मैं तो यह मानता हूं कि एक सच्चा, अच्छा और आदर्श अध्यापक या अध्यापिका मानव समाज में एक संन्यासी की अपेक्षा कहीं अधिक मान्य और उपयोगी है। अध्यापक या अध्यापिका का कर्तव्य राष्ट्र के बड़े से बड़े अधिकारी की अपेक्षा ज्येष्ठतर है।

आप केवल शिक्षक ही नहीं हैं, राष्ट्र के सच्चे सुनिर्माता भी हैं। किसी भी राष्ट्र की वास्तविक महत्ता उसके नागरिकों और नागरिकाओं के जीवन के स्तर से मापी जाती है। और नागरिकों के जीवन का स्तर उनके रहन-सहन के स्तर से नहीं, उनके चरित्र और उनकी अनुशासनयुक्त कार्यक्षमता के स्तर से आंका जाता है। आपका कर्तव्य केवल पुस्तकें पढ़ाना ही नहीं है, राष्ट्र के भावी नागरिकों [विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों] के जीवनों का सुनिर्माण भी है।

भारत के नागरिकों का अभी तक न तो वैयक्तिक और पारिवारिक चरित्र ही बन पाया है, न सामाजिक और राष्ट्रीय चरित्र ही। हमारे विद्यालयों से आज जिस कोटि के नागरिक और नागरिका निकल रहे हैं, उनसे आपके प्यारे राष्ट्र का समुत्थान तथा सुनिर्माण होना सर्वथा असम्भव है। उनमें न तो शिक्षा की दृष्टि से कोई ठोसपन या गहनता है, न चारित्रिक दृष्टि से कोई उच्चता अथवा परिपक्वता है और न कार्यक्षमता वा अनुशासन की दृष्टि से कोई विशिष्टता है।

अपने जीवन का स्तर ऊंचा करके आपको अपने विद्यार्थियों व विद्यार्थिनियों का जीवन-स्तर ऊंचा करना है। रहन-सहन का स्तर नहीं, जीवन का स्तर ऊंचा करने से राष्ट्र के उत्थान का मार्ग प्रशस्त होगा।

रहन-सहन का स्तर सरल सादा रखना है।
पर जीवन का स्तर हमें ऊंचा करना है॥

अधिकार और कर्त्तव्य [१८]

आप अपने अधिकार और अपने कर्तव्य—दोनों ही से बहुत दूर होगए हैं। प्राचीन भारत में आपके बहुत बड़े अधिकार थे—इतने बड़े अधिकार थे, जितने बड़े अधिकार किसी जनपद के राजा को भी प्राप्त न थे। उस समय आपके इतने बड़े अधिकार इसलिए थे कि तब आपने महानतम कर्तव्यों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया हुआ था।

संयम, सदाचार, सुस्वास्थ्य, तप, श्रम और शिक्षा—इन षड् महा कर्तव्यों का सुदुस्तर उत्तरदायित्व उस समय के अध्यापकों और अध्यापिकाओं ने स्वेच्छया संभाला हुआ था। इसी लिए तब उनके इतने बड़े अधिकार थे कि राजा से लेकर निम्नतम व्यक्ति तक आत्मना उनका मान और उनके आदेशों का पालन करता था।

उस समय का प्रत्येक अध्यापक और प्रत्येक अध्यापिका स्वयं इन षड् सुभूषणों से सुभूषित होता था और अपने प्रत्येक विद्यार्थी को इनसे सुभूषित करके विद्यासमाप्ति पर उसे अपने विद्यालय से भेजता था। आपके आजके ये विद्यार्थी और विद्यार्थिनी ही कल भारत के भविष्यनिर्माता और भाग्यविधाता बनेंगे। आप इन्हें जैसा बनाएंगे, देश का भविष्य और राष्ट्र का भाग्य वैसा ही बनेगा।

युग की मांग है कि आप स्वयं सब प्रकार के व्यसनों और दुरितों से अपने आपको मुक्त करें। आत्मसंयम के आश्रय से ही आप ऐसा कर सकेंगे। संयम के अभाव में ही आप आज विविध व्यसनों और दुरितों के शिकार होरहे हैं। व्यसनों और दुरितों से मुक्त होने पर ही आप वास्तविक अर्थों में सदाचारी बनेंगे। सदाचार की भित्ति पर स्थित होकर अपने आपमें आदर्श स्वास्थ्य की स्थापना कीजिए। स्वास्थ्य पर ही तप आधारित है और श्रम भी। संयमी, सदाचारी, स्वस्थ, तपस्वी और श्रमशील अध्यापक अध्यापिका ही पवित्रता के साथ शिक्षासत्र का यथावत् संचालन कर सकेंगे।

अपने प्रिय राष्ट्र के कल्याण के लिए अपने जीवनों को ढालिए और अपने विद्यार्थियों व विद्यार्थिनियों के जीवनों में संयम, सदाचार, सुस्वास्थ्य, तप और श्रम की स्थापना कीजिए। आप मेरी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी प्रकार जानते हैं कि इनके बिना शिक्षा अर्थकरी भले ही होजाए, इष्टसाधिका

कदापि नहीं हो सकती। यों सुसज्ज होकर जब आप शिक्षा-कार्य करेंगे, तब ही आप अपने महान् राष्ट्र के इन भावी नागरिकों को सुयोग्य और सक्षम बना सकेंगे। आप ऐसा करेंगे तो समय आएगा जब भारत का जन जन आपके चरणों में नमेगा और आपका अभिस्तवन करेगा। तब आपको वे अधिकार प्राप्त होंगे, जिनकी आज आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। कर्तव्य में अधिकार संनिहित रहते हैं, यह निश्चय जानिए।

भव्य-स्वप्न [१६]

अध्यापकों के एक सम्मेलन में अनायास ही सन्त अनाम जा निकले। अध्यापक मण्डल ने खड़े होकर उनका सप्रणाम स्वागत करके प्रश्न किया, 'सन्त अनाम ! भविष्य किस जाति का समुज्ज्वल होता है ?'

'जिस राष्ट्र के अध्यापक भव्य-स्वप्नद्रष्टा होते हैं ?'

'और किस राष्ट्र का भविष्य भयावह होता है ?'

'जिस राष्ट्र के अध्यापक भव्य-स्वप्नद्रष्टा नहीं होते' !

ये हैं दो प्रश्न और दो उत्तर, जो आज आपके गहन चिन्तन के लिए आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं।

स्वयं अपने आपके लिए और अपने प्राणप्रिय विद्यार्थियों के लिए क्या आपके अन्तः में कोई भव्य स्वप्न निहित हैं ? इस प्रश्न का उत्तर यदि आपकी ओर से हां में है, तो आपके प्रिय राष्ट्र का भविष्य निस्सन्देह समुज्ज्वल है। यदि आपका उत्तर नहीं में है, तो आपके राष्ट्र का भविष्य भयावह है।

स्वयं अपने लिए आपके मन में भव्य स्वप्न होने चाहिएं और आपके अपने प्रिय विद्यार्थियों के लिए भी।

आदर्श आचार, आदर्श विचार और आदर्श साधना—ये तीन भव्य स्वप्न होने चाहिएं प्रत्येक आचार्य और आचार्या के स्वयं अपने लिए।

हमारे विद्यार्थी सिद्ध हों तेजस्वी, सदाचारी, कर्तव्यपरायण, धीर, वीर, दक्ष और सक्षम नागरिक—यह स्वप्न होना चाहिए प्रत्येक आचार्य और आचार्या का अपने शिष्यों और शिष्याओं के लिए।

स्वप्नों की सार्थकता में ही किसी भी राष्ट्र के भविष्य की समुज्ज्वलता संनिहित है।

आप भव्य-स्वप्न-द्रष्टा बनिए और अपने विद्यार्थियों को भारत के भव्य नागरिक बनाकर भारत को भव्य बनाइए।

सन्त अनाम कहते हैं, 'निर्माताओ, प्रथम अपना निर्माण करो। चिकित्सको, पहले अपनी चिकित्सा करो।'

सन्त अनाम के ये शब्द आपके द्वारा विचारणीय हैं। इनपर आप-विचार कीजिए और गहनता तथा गम्भीरता के साथ विचार कीजिए।

आप निर्माता हैं। क्या आत्म-निर्माण के बिना आप अपने विद्यार्थियों के जीवनों में कोई सुष्ठ निर्माण कर सकेंगे ? क्या आत्म-चिकित्सा किए बिना आप अपने विद्यार्थियों की चिकित्सा कर सकेंगे ?

मेरे देखते-देखते मेरे अपने विद्यार्थीकाल के अध्यापकों में और आज के अध्यापकों में भू आकाश का अन्तर हो गया है। प्राचीन अध्यापक जहां विद्या का भण्डार होते थे, वहां जीवन का आगार भी होते थे। जहां वे अहर्निश विद्या का अर्जन करते रहते थे, वहां वे जीवनतत्त्वों का चयन करते हुए अपने जीवन का सुनिर्माण भी करते रहते थे। गहन विद्या के साथ साथ वे समुदात्त व्यक्तित्व भी रखते थे।

सामान्यत: आज के अध्यापक के पास न विद्या है, न सुनिर्मित जीवन है। आज का अध्यापक न विद्वान् है, न जीवनवान् है। आज के अध्यापक के पास डिग्रियां तो हैं, परन्तु विद्या नहीं है। वह साक्षर तो है, पर विद्वान् नहीं है। वह जीवित है, पर जीवनवान् नहीं है। आज का अध्यापक उपाधियों [डिग्रियों] से उपाधित है, विद्या और सुनिर्मित जीवन से साधित नहीं है। और इसी लिए आज उससे कुछ वन नहीं पारहा है। यह कैसी दयनीय स्थिति है।

इस दयनीय स्थिति के लिए केवल आपही उत्तरदायी नहीं हैं, आपका समाज और शासन भी उत्तरदायी है। समाज और शासन में आज स्वसम्पादित योग्यता और स्व-निर्मित सुजीवन का कोई मूल्यांकन नहीं है। डिग्रियों से लदा हुआ गन्दे से गन्दा आदमी भी जव अपनी पहुंच के वल पर उच्च से उच्च पद पर आसीन होकर समाज और शासन में मान पाता है, तो योग्यता-सम्पादन और जीवन-निर्माण की दिशा में कोई प्रवृत्त क्यों होने लगा। शिक्षा-विभाग में भी स्थिति ऐसी ही है। परिणामत: योग्य अध्यापक अध्यापिका भी निरुत्साहित होकर विद्यार्जन और जीवन-निर्माण की ओर से अपना मुंह मोड़ लेते हैं।

फिर भी मैं निवेदन करूंगा कि कष्ट और प्रतिकूलता की ग्लानि सहते हुए भी आप अपने आत्मनिर्माण से उदासीन न हूजिए। अपना जीवन स्वयं अपने आप में एक पावन निधि है। परिस्थितियों की प्रतिकूलता से परास्त न हूजिए। प्रतिकूलताओं में होकर अनुकूलताओं का सम्पादन कीजिए। बेशक, हालात न केवल आपके अनुकूल नहीं हैं, अपि तु सर्वथा प्रतिकूल हैं। धीर बनकर धैर्यपूर्वक प्रतिकूलताओं को परास्त करते हुए आत्म-दृढ़ता के साथ आत्मनिर्माण के राजपथ पर आरूढ़ हूजिए। डिग्रियों के साथ ही ठोस योग्यता तथा विद्या का निष्पादन कीजिए। अविचल निष्ठा के साथ अपने जीवनों के सुनिर्माण में लगिए। योग्यता, विद्या और सुनिर्मित जीवन से युक्त होकर विद्यालयों में, राष्ट्र में और संसार में ज्योति जगाकर सुनिर्माण कीजिए।

असली बात तो यह है कि संसार कितना भी भ्रष्ट क्यों न हो जाए, योग्यता का सत्कार, विद्या का मान और सुनिर्मित जीवन का पूजन होता ही है। सन्नद्ध होकर तत्परता के साथ उठिए और आत्मनिर्माण करते हुए विश्व कल्याण कीजिए।

समाज पर और सामाजिक अवस्था पर आपका अधिकार न सही, अपने निज के जीवन पर तो है। आत्माधिकार ही आत्मसर्जन और आत्मनिर्माण के लिये सुपर्याप्त है। शुद्ध सात्त्विक आहार से अपने सत्त्व को निरन्तर शुद्ध करते रहिए। सुस्थिर दैनिक कार्यक्रम के द्वारा अपने समय को सुव्यवस्थित कीजिए। सत्संग, स्वाध्याय और आत्मनिरीक्षण करते हुए अपने विचारों और अपनी भावनाओं का शोधन करते रहिए। सोते उठते आत्मचिन्तन करके अपने आत्मा का संविकास कीजिए। धृति और विवेक के आश्रय से आत्मबोध प्राप्त करते रहिए। ब्रह्ममुहूर्त में ब्रह्म का ध्यान करके दिव्य ज्योति से ज्योतिष्मान् होते जाइए। व्यायाम, प्राणायाम और संयम के अभ्यास से अपने शरीर को नीरोग, स्वस्थ और सक्षम रखिए।

आत्माधिकार के रहस्य को समझिए। आत्माधिकार की भित्ति पर संस्थित होकर आत्मनिर्माण कीजिए। आत्म-निर्मित होते हुए अपने चारों ओर सुनिर्माण करते चलिए।
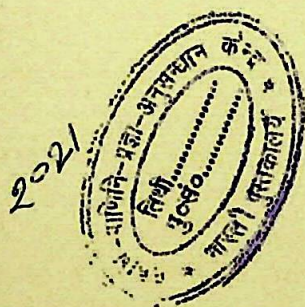
पाठक से

वेद-संस्थान इस पुस्तक की विषयवस्तु, लेखनशैली और आकार-प्रकार के बारे में आपके विचारों के लिए आभारी होगा। अन्य कोई सुझाव आप देना चाहें तो उन्हें जानकर भी हमें प्रसन्नता होगी। हमारा पता है : बाबू मोहल्ला, ब्यावर रोड, अजमेर, भारत।

●जन्म १५ नवम्बर, १८९९ ई०। वेद
(अजमेर, दिल्ली) के संस्थापकाध्यक्ष। इ
मर्मज्ञ व्याख्याता, चिन्तक, कवि, और
श्रमी सन्त। वाणी में अदभुत माधुर्य अ
को छू लेने की क्षमता। व्यक्तित्व जो
आकर्षित कर लेता है आत्मीयता, स्नेह, सरलता
से। सतत कर्मरत, प्रतिक्षण साधनामय, भक्ति
और निष्ठा से ओत-प्रोत जीवन। लेखन की शैली ललित, प्रसादगुणयुक्त,
अनावश्यक विस्तार से रहित।

'विदेह' के चिंतन में प्रखरता और व्यावहारिकता है। यद्यपि उनका जीवन वेद और योग को समर्पित है तथापि उनके चिंतन एवं लेखन-प्रवचन में रहस्यात्मकता अथवा विषय को गुरु-गम्भीरं बनाकर प्रस्तुत करने की वृत्ति बिलकुल नहीं है। प्रस्तुत पुस्तिका राष्ट्र के भावी नागरिकों के निर्माताओं के व्यक्तित्व और दायित्व के विषय में 'विदेह' के उदात्त चिंतन का निदर्शन है। स्मरणीय है कि वे स्वयं भी अपनी तरुणाई में एक आदर्श शिक्षक रह चुके हैं। अतः एक शिक्षक का शिक्षकों को इस पुस्तिका में सत्परामर्श निहित है।

पचास पैसे